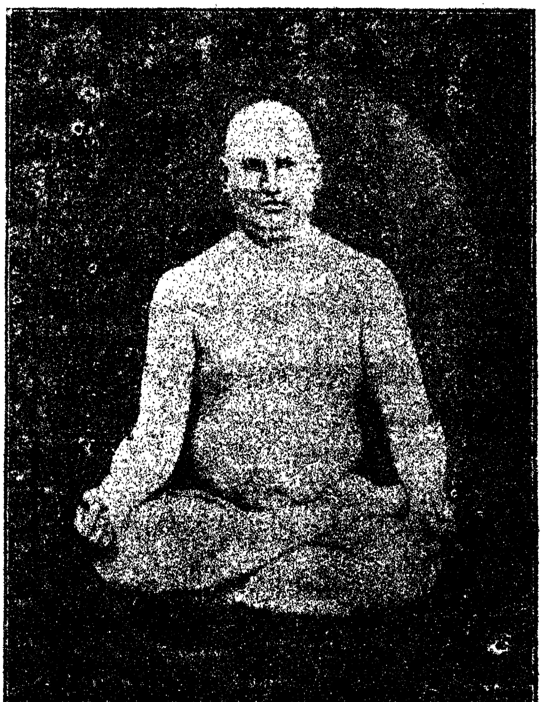
श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी सं० १९८१ के उपलक्ष्य में

ओ३म्

ऋषि दयानन्द जीवन कथा

बालकों के हितार्थ।



ऋषि दयानन्द

लेखकः—बाबू घासीराम एम. ए. एल. एल. बी. मेरठ

मुद्रक व प्रकाशकः—बाबू शिवकृपाल-विद्या प्रिंटिंग प्रेस मेरठ।

प्रथमवार ५००० } सन् १९२५ { मूल्य -)

ओ३म्

आर्यसमाज के नियम।

(१)-सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

(२)-ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

(३)-वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥

(४)-सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५)-सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ॥

(६)-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७)-सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

(८)-अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९)-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०)-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥

* ओ३म् *

ऋषि दयानन्द जीवन कथा

जन्म स्थान व पितृकुल

भारतवर्ष के पश्चिम में एक देश है जिसे गुजरात कहते हैं। उसी के एक भाग का नाम काठियावाड है जिसमें बहुत से छोटे २ देसी रजवाड़े राज्य करते हैं जिन्हें ठाकुर कहते हैं। इनमें से एक राज्य का नाम मोर्वी है। उसमें एक क़स्बा है जिसका नाम टंकारा है। जिस समय की हम कथा कहने वाले हैं उस समय वहां एक जमेदार रहते थे जो सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। उन दिनों टंकारा के इलाक़े को मोर्वी के ठाकुर ने एक मरहटा सेठ के पास गिरवी रख छोड़ा था और उस सेठ की ओर से प्रबन्ध के लिए 'जमेदार' नियत थे जिन्हें आज कल की भाषा में 'तहसीलदार' कहना चाहिए। जमेदार के नीचे मुन्शी मुतसद्दी और सिपाही प्यादे रहते थे। टंकारे के उक्त जमेदार का नाम था करसनजी लालजी त्रिवाड़ी। गुजरात में मनुष्यों के दोहरे नाम होते हैं पहिला नाम मनुष्य का अपना होता है और दूसरा उसके पिता का। इसलिए करसनजी जमेदार का नाम था और लालजी उनके पिता का। सं० १८८१ विक्रम में जिसे अब सं० १९८१ विक्रम में पूरे सौ बरस हुए उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम मूलशंकर करसनजी रक्खा गया। प्यार में लोग अपने पुत्रों के नाम को छोटा करके पुकारा करते हैं इसलिए माता पिता मूलशंकर को मूलजी कहा करते थे। मूलशंकर हमें भी बहुत प्यारा है इसलिए हम भी इस बालक

को मूलजी ही कहेंगे। मूलजी के पिता वैसे तो सामवेदी थे परन्तु वह शिवजी के भक्त होने के कारण यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पांच ही बरस की आयु में मूलजी को पढ़ने बिठा दिया गया। मूलजी था बुद्धि का तेज़, थोड़े ही दिनों में पढ़ने में चल निकला और रुद्री आदि वेद के बहुत से मंत्र और संस्कृत के श्लोक कंठ कर लिये। आठवें वर्ष में मूलजी का जनेऊ हुआ और उसके पिता उसे अपने समान शिवजी का पक्का भक्त बनाने का यत्न करने लगे। वह उसे शिव जी की पूजा का फल बताते, शिवजी की कथा सुनाते और जहां कहीं शिव पुराण की कथा होती अपने साथ ले जाते।

शिव रात्रि का व्रत

गुजरात में शिवरात्रि का व्रत माघ बदि १४ को होता है। मूलजी १४ वर्ष का हो गया। करसनजी ने शिवरात्रि का मूल जी से व्रत रखने को कहा। मूलजी अपनी मां को आंखों का तारा था। उसकी मां ने अपने पति से बहुत कुछ कहा कि मूलजी से व्रत न रक्खा जायगा परन्तु करसनजी कट्टर शिव भक्त थे, वह काहे को मानने वाले थे। उन्होंने मूलजी से व्रत रखाकर ही छोड़ा। टंकारे से कुछ दूर शिवजी का एक बहुत बड़ा मन्दिर है जहाँ टंकारे के आस पास के शैव शिव चौदश की रात को रात भर शिवजी की पूजा करने के लिए इकट्ठे होते थे। करसनजी मूलजी को साथ लेकर वहाँ पहुंचे। पहले पहर की पूजा तो ठीक २ होगई, दूसरे पहर की पूजा भी ज्यों त्यों करके लोगों ने पूरी की परन्तु उसके पीछे तो सबको नींद ने आ दबाया और सबसे पहले यदि कोई सोया तो वह करसनजी ही थे। मूलजी तो बालक था उसे सबसे पहले नींद आनी चाहिये थी और उसे नींद आई भी परन्तु वह इस डर से कि कहीं सोने से व्रत न टूट जाय

आंखों पर पानी के छींटे देकर जागता रहा। जब सब के सो जाने के कारण मंदिर में सन्नाटा होगया तो मूलजी ने देखा कि चूहे अपने बिलों में से निकल कर शिवजी की मूर्त्ति पर दौड़ लगाने और चढ़ावे को खाने लगे। मूलजी इसे देखकर सोचने लगा कि इस मूर्त्ति को तो सारे जगत् का मालिक बताया जाता है, यह क्या बात है जो इससे अपने ऊपर से चूहे भी नहीं हटाए जाते। जब किसी तरह मूलजी का संदेह न मिटा तो उसने करसनजी को जगाया और जो बात उसके मनमें खटक रही थी उनसे पूछा। अब करसनजी चुप, माथे पर हाथ रखकर सोचने लगे कि यह क्या हुआ, कहां १४ बरस का लड़का और कहां यह विकट प्रश्न। उत्तर भी क्या देते? जब ईश्वर की मूर्त्ति हो ही नहीं सकती तो मूलजी को समझाते भी क्या? ज्यों त्यों करके कुछ उत्तर दिया परंतु मूलजी ने तुरंत ही काटकर रख दिया। फिर तो करसनजी बहुत सिटपिटाए और झुंझलाए भी परन्तु मूलजी जिसके मन में सच की खोज की लगन लगी हुई थी उनकी धमकी में न आया और प्रश्न पर प्रश्न करके करसनजी को तंग करने लगा, अन्त को करसनजी को चुप होना पड़ा और मूलजी के मन से सदा के लिए मूर्त्तिपूजा से श्रद्धा बिदा होगई। अब मूलजी का मंदिर में जी काहे को लगना था, उसने अपने पिता से घर जाने की आज्ञा मांगी। पिता ने सोचा अच्छा है यह झंझट दूर हो आज्ञा देदी और चपरासी को साथ करके मूलजी को घर भेज दिया। परंतु चलते २ भी उससे कह दिया कि देखना कुछ खापी कर व्रत मत तोड़ देना। मूलजी घर पहुँचा, मां मूलजी का कुम्हलाया हुआ चेहरा देखकर समझ गई कि बालक से व्रत नहीं रक्खा गया और जब उसने कुछ खाने को मांगा तो उसने खुशी २ उसे दे दिया। दिन निकलते ही करसनजी भी मंदिर से लौट कर घर पहुंचे और मूलजी

के रात में भोजन करने का हाल सुनकर बहुत बिगड़े। मूलजी के चचा उसे बहुत प्यार करते थे उनके कहने सुनने से करसनजी का क्रोध शांत हुआ और मूलजी पहिले की तरह लिखने पढ़ने में लग गया।

मौत से बचने का उपाय सोचना

इसके दो बरस पीछे की बात है कि एक रात को उसकी बहिन को हैज़ा हो गया। बहुतेरा इलाज किया गया परंतु कुछ फल न निकला और थोड़ी ही देर में वह मर गई। सारे घर में रोना पीटना मच गया परन्तु मूलजी की आंख से एक आंसू न निकला। वह एक कोने में खड़ा हुआ चुपचाप यह सोचता रहा कि मौत से बचने का भी कोई उपाय है वा नहीं। लोगों ने समझा कि मूलजी का हृदय बहुत कठोर है और इसलिए उसे सबने ही बुराभला कहा। खैर दिन बीतते गये और मूलजी के मन में मौत से बचने के उपाय ढूंढने की फिकर बढ़ती गई। जब मूलजी १६ बरस का हुआ तो उसके प्यारे चचा भी हैज़े से चल बसे। मरते समय उन्होंने मूलजी को अपने बिस्तर के पास बुलाकर प्यार के साथ देखा और चचा भतीजे फूट २ कर रोने लगे। चचा की मौत के बाद तो मूलजी का चित्त संसार से बिल्कुल ही उचट गया और वह चुपके २ लोगों से यह पूछने लगा कि मनुष्य मौत से कैसे बच सकता है। उसके यह विचार मां बाप पर भी प्रकट हो गये। उन्होंने सोचा कि मूलजी का ब्याह कर देना चाहिये नहीं तो वह किसी दिन घर बार छोड़ कर निकल जायगा।

इधर मां बाप के यह विचार उधर मूलजी का यह इरादा कि चाहे जो हो मैं ब्याह नहीं करूंगा। उसने यह सोचा कि मां बाप से काशी जाकर पढ़ने की आज्ञा लूं और इस

बहाने से शायद ब्याह की बला से बच जाऊं, मां बाप लड़के की बातों में क्यों आने लगे थे वह उसकी चाल को भाँप गये और उन्होंने भेजने से साफ़ इन्कार कर दिया। अंत को मूल जी ने सोचकर उनसे यह कहा कि अच्छा जो काशी नहीं भेजते हो तो टंकारे से ३ कोस पर जो अमुक पंडित रहता है उसी के पास पढ़ने भेजदो। इस पर वह राज़ी हो गये और मूलजी वहां जाने लगा। बातों २ में एक दिन उसके मुंह से निकल गया कि मैं ब्याह कभी भी नहीं करूंगा। यह बात करसनजी के कानों तक भी पहुंच गई और वह मूलजी की मां से सलाह करके उसके ब्याह की तैयारी करने लगे। उधर मूलजी ने भी यह ठानली कि घर छोड़ना पड़े सो पड़े पर ब्याह नहीं करूंगा।

घर से बाहर

एक दिन दिन छिपे घर बार, माता पिता, भाई बंध, का मोह छोड़ कर उसने जंगल का रास्ता लिया और पगडंडियों और खेतों में होता हुआ दूसरे दिन सूरज डूबते २ घर से १६, २० कोस निकल गया और एक हनुमान जी के मन्दिर में डेरा किया। उन दिनों वहां सामले गांव में जो मोर्वी रेलवे के मूल नाम के स्टेशन के पास है एक लाला भगत नाम का साधु रहता था जिसके योगी होने की चर्चा थी। मूलजी ने भी उधर को ही क़दम बढ़ाया। रास्ते में कुछ साधुओं ने उसके रुपये और अंगूठी आदि गहने ठग लिये। वहां वह ब्रह्मचारियों की संगत में पड़कर ब्रह्मचारी बन गया और उसका नाम शुद्ध चैतन्य रक्खा गया। सामले से शुद्ध चैतन्य काठगांगड़ गाँव में पहुंचे जो अहमदाबाद के पास है। यहां उन्हों ने सुना कि कार्तिक में सिद्धपुर में बड़ा भारी मेला होता है जहाँ अच्छे २ योगी आते हैं। रास्ते में उनकी

एक बैरागी से भेट हो गई जिस की उनके पिता से जान पहिचान थी। उससे उन्हों ने अपने घर से भागने और सिद्धपुर जाने का सब हाल कह दिया। उसने जाकर करसनजी को सब बातें बतादीं।

फिर पकड़े गये और फिर भागे

प्यारे पुत्रका पता पाते ही करसनजी ने झटपट अपना सामान ठीक करके कई सिपाही साथ लिये और सिद्धपुर को चल खड़े हुए। सिद्धपुर में मूलजी को ढूँढते खोजते नीलकंठ महादेव के मंदिर में पहुंचे। वहाँ उन्होंने देखा कि मूलजी गेरुए कपड़े पहने और तूंबा हाथ में लिए दूसरे साधुओं के साथ बैठा है। उसका यह रूप देखकर उनकी आंखों में लोहू उतर आया। उन्होंने आव देखा न ताव झपट कर उसके तूंबे को ज़मीन पर दे पटका और उसके कपड़े चीर २ कर डाले और कहनी न कहनी जो मुंह में आई सो कही। मूलजी क्या करता भीगी बिल्ली बना हुआ सब कुछ चुपचाप खड़ा सुनता रहा और अंत में यह कह कर अपना पीछा छुड़ाया कि वह बुरी संगत में पड़ कर घर से निकल आया था, अब वह फिर घर लौट जाने पर तय्यार है। करसनजी ने उसे नए कपड़े दिये और उसपर सिपाहियों का कड़ा पहरा खड़ा कर दिया। शुद्धचैतन्य फिर मूलशंकर बनने को तैयार न था। वह इस ताक में रहा कि कब सिपाहियों की आँख झपके और कब वह भागे। उसने बे नींद भी ज़ोर २ से ख़र्राटे लेने शुरू कर दिये। सिपाही भी यह सोचकर कि अब तो उनका क़ैदी सो गया है अब चिंता काहे की है लेट गये और लेटते ही चित हो गये।

शुद्ध चैतन्य उठे और एक लोटा हाथ में लेकर दबे पांव पहरे में से निकले कि यदि पकड़े जायंगे तो कह देंगे कि टट्टी जाते हैं नहीं तो काम बन ही गया है। एक बार वहां से निक-

लना था फिर तो वह ऐसे भागे जैसे पिंजरे में से तोता। शुद्ध चैतन्य एक पुराने मंदिर में एक बड़े घने पेड़ की डालियों में जा छिपे और सारा दिन वहीं बैठे रहे। जब रात होगई तब उतरे और जितना जल्द उनसे भागा जा सका भागे और रात को एक गांव में ठहरते हुए अहमदाबाद होकर चाणोद कल्याणी जा पहुंचे जहां विद्वानों की एक बड़ी सभा होने वाली थी। वहां उन्होंने इसलिए कि ब्रह्मचारी वेश में रहते हुए उन्हें भोजन आप पकाना पड़ता था संन्यासी बनना चाहा और एक विद्वान् संन्यासी पूर्णानन्द से उन्होंने संन्यास लिया और अब उनका सदा के लिए 'दयानन्द सरस्वती' नाम पड़ गया।

योगियों की खोज

वह जहां कहीं भी रहे विद्या पढ़ते और योग सीखते रहे। अहमदाबाद में ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि दो साधुओं से योग विद्या के बहुत से छिपे भेद उन्हें मालूम हुए और वहां से यह सुन कर कि आबू पर्वत पर बहुत अच्छे २ योगी रहते हैं वहां जा विराजे और योगियों से मिलकर योग अभ्यास करते रहे। इतने में ही हरिद्वार का सं० १९१२ का कुंभ आ पहुंचा। उन्हों ने सुना था कि वहां भी बहुत से योगी इकट्ठे होते हैं। वहां पहुंच कर वह चंडी के जंगल में योग अभ्यास करते रहे। जब मेला हो चुका तो हृषीकेश गये और वहां से टिहरी। टिहरी में एक दिन एक ब्राह्मण ने इन्हें अपने घर भोजन का न्योता दिया। परन्तु जब यह उसके घर पहुंचे तो इन्हों ने देखा कि वहां मांस बनाया जा रहा है। यह उलटे पैरों ही वापिस चले आए।

स्वामी जी पहाड़ के बहुत से स्थानों में योगियों को खोजते और पर्वत की सुन्दर, सुहावनी जगहों को देखते

और विद्वान और अच्छे साधुओं से सत्संग करते रहे। घूमते २ एक दिन वह एक ऐसे जंगल में जा पहुंचे जहां से बाहर निकलना दूभर हो गया। कांटों और झाड़ियों में इलझकर इनके सारे कपड़े फट गये और शरीर लोहू लुहान हो गया। वहाँ से बड़ी कठिनाई से कितनी ही रात गये ओखी मठ पहुंचे।

ओखी मठ के महंत ने दयानन्द को चेला बनाना चाहा और उन्हें धन दौलत का लालच दिया। उन्हों ने कहा महंतजी जो मैं रुपये पैसे का भूखा होता तो अपने पिता का घर छोड़ कर ही क्यों आता। वहां से बदरी नारायण पहुंचे। एक दिन योगियों की खोज में पहाड़ों में घूम रहे थे कि अलखनंदा नदी के निकास की ओर जा निकले जहां इन्हें कोई मार्ग न मिला। सर्दी बड़े कड़ाके की पड़ रही थी और इनके शरीर पर कपड़े काफ़ी न थे। नदी को पार करके ही यह उस बीहड़ और विकट जगह से निकल सकते थे इस लिए यह नदी में उतरे परन्तु धार ऐसी तेज़ थी कि पैर न जमते थे और बरफ़ के टुकड़े छुरी से अधिक पैने थे। नदी को पार करना बहुत मुश्किल हो गया। बरफ़ के टुकड़ों से पैर छिद कर छलनी बन गये और उनसे खून के फ़व्वारे छुटने लगे। सारा शरीर सुन्न पड़ गया। एक बार तो दयानंद को यह दिखाई देने लगा कि मौत सामने खड़ी है। वह हिम्मत करके नदी से पार तो होगये परन्तु उनमें हिलने जुलने की ताक़त नहीं रही थी। उन्हों ने कपड़े फाड़ २ कर पैरों के घावों पर पट्टी बांधी और जब कुछ घंटे पीछे उन्हें होश आया और थकान उतरा तो गिरते पड़ते रात के ८ बजे बदरी नारायण के मन्दिर में पहुंचे। वहां से घूमते घामते काशीपुर व द्रोण सागर गये। यहां एक बार उनके मनमें प्राण छोड़ने की आई परंतु फिर आप ही यह सोच कर कि जिस ज्ञान की तलाश में घर से निकले हो उसे बिना जाने ही मर जाना मूर्खता है इस कुविचार से हट गये।

एक दिन वह गंगा के किनारे २ जा रहे थे कि उन्हें एक मुर्दा बहता हुआ दिखाई दिया। हठ योग की पुस्तकों में इन्होंने मनुष्य के शरीर के अन्दर के कई भागों का विचित्र वर्णन देखा था। इनके जी में आया कि इस मुर्दे को चीर कर देखें कि उन पुस्तकों का लेख ठीक है कि नहीं, बस फिर क्या था, गंगा में कूद पड़े और मुर्दे को किनारे पर खींच लाए। हाथ में छुरी ली और सामने पुस्तकें रक्खीं और मुर्दे को चीरना शुरू किया और एक २ अंग का पुस्तकों में लिखी बातों से मिलान करने लगे। जब दोनों में बिल्कुल भी मेल न पाया तो मुर्दे के चिरे फड़े शरीर के साथ ही पुस्तकों को भी गंगा में बहा दिया। गंगा के किनारे घूमते घामते चिडालगढ़ पहुंचे। यहां उन्हें भांग पीने की आदत पड़ गई। एक दिन वह चिडालगढ़ के पास एक गाँव में जा निकले जहां एक महादेव जी का मंदिर था। इसमें नादिये की एक बड़ी भारी मूर्ति थी जिस का पेट भीतर से खाली था। इन्हों ने देखा कि उस के पेट में एक आदमी छिपा हुआ है। इन्हों ने उसकी ओर ज्यों ही हाथ बढ़ाया त्यों ही वह निकल कर भाग गया। यह भी भांग के नशे में चूर थे, उसी नादिये के पेट में घुस कर सो गये। दिन निकला एक बुढ़िया उस पर गुड़ और दही चढ़ाने लाई। इन्हें भूख लग रही थी, उस दही और गुड़ को खूब खाया। दही खट्टा था उसने भांगका नशा उतार दिया। भांग पीने पर यह बहुत पछताए और वहीं इस कुटेव को छोड़ने का परन कर लिया।

इधर उधर विचरते २ एक दिन इनके जी में नर्वदा नदी का निकास देखने की आई। विचार का आना था कि यह डंडकमंडल लेकर उधर को ही चल दिये। रास्ते बड़े विकट थे। एक दिन ऐसे जंगल में जा फंसे जहाँ घास और झाड़ियों के कारण कोई मार्ग न सूझता था। यह उस झाड़ झंकाड़ में से

निकलने का यत्न कर रहे थे कि एक काला रीछ अपनी पिछली टांगों पर खड़ा होकर चिंघाड़ता हुआ मुंह फैला कर इनकी ओर लपका। यह भी उसके सामने डट गये और अपना सोंटा उस के मुह में दे दिया। वह डरकर पीछे की तरफ़ को ही लौट गया। यह आगे को बढ़ गये। कई जगह जंगल इतना घना था कि इन्हें अपने पेट के बल सरक २ कर उसमें से निकलना पड़ा। इसी प्रकार नर्बदा के किनारे दो तीन बरस घूमते रहे।

सत् गुरु मिल गया

सम्वत् १६१७ के लगभग दयानंद मथुरा में स्वा० विरजानंद जी से विद्या पढ़ने के लिए गये। स्वा० विरजानंद ऋषियों की बनाई हुई पुस्तकों को ही मानते थे। उन्होंने दयानन्द से दो बातें कहीं एक तो यह कि अब तक तुमने जो मनुष्यों की बनाई हुई पुस्तकें पढ़ी हैं उन्हें जमना में फेंक आओ, दूसरी यह कि अपने खाने पीने का ठीक बन्दोबस्त करलो। रामलाल एक गुजराती ब्राह्मण ने जिन्हें जोशी बाबा कहते थे अपने घर भोजन खिलाने का प्रबन्ध कर दिया और यह स्वा० विरजानन्द जी से पढ़ने लगे। जैसा चेला विचित्र था गुरु भी वैसे ही विचित्र थे। दयानन्द को अब तक जो गुरु मिले थे उनमें से एक भी विद्या में विरजानंद के जोड़ का न था और विरजानन्द को भी जितने विद्यार्थी मिले थे उनमें से एक भी दयानन्द के पल्ले का न था। दोनों में खूब बनी। चेले ने मन भर के पढ़ा और गुरु ने मन भर के पढ़ाया। विरजानन्द स्वभाव के बड़े तेज़ थे। कभी २ यह दयानंद को पीट भी दिया करते थे परन्तु वह उससे ज़रा भी बुरा न मानते थे। जब दयानंद विद्या पढ़ चुके तो गुरु से विदा होने को सेरभर लौंग लेकर गये और उनसे कहा महाराज मेरे पास दक्षिणा देने को धन तो है नहीं आप संन्यासी की भेंट यह लौंग ही स्वीकार कीजिये। विरजानन्द की आंखों में आंसू

भर आए और प्यारे शिष्य को छाती से लगाकर बोले कि मैंने तुझे दक्षिणा के लालच से नहीं पढ़ाया है। मैंने तो इस लिए पढ़ाया है कि देश में वैदिक धर्म का लोप होकर तरह २ के पाखंड फैले हुए हैं, तू वेदों का और ऋषियों की बनाई हुई पुस्तकों का प्रचार और पाखंड मतों का खंडन कर। दयानन्द ने गुरु का कहना सिर आंखों पर रक्खा, और बिदा हुए। मथुरा से दयानंद आगरा गये और वेदों पर विचार और योग अभ्यास करते रहे। आगरे में दयानंद लगभग २ बरस रहे, बीच बीच में जब कोई शंका होती तो उसे मथुरा जाकर गुरुजी से पूछ आते। ग्वालियर के महाराजा ने सं० १९२२ में देश भर से १०८ भागवती पंडित इकट्ठे करके भागवत का पाठ कराया था और उसपर हज़ारों रुपया ख़र्च किया था। दयानंद भी इस अवसर पर ग्वालियर पहुंच गये। इनके आने का समाचार सुनकर महाराजा ने भागवत पाठ का माहात्म्य पूँछा। इन्हों ने कह दिया कि इसका फल सिवाय दुःख के और कुछ न होगा। कहते हैं कि इधर कथा पूरी हुई उधर महारानी का गर्भ गिरगया, नगर में हैजा फैल गया और छोटे महाराज कुमार का परलोक हो गया। दयानन्द बराबर भागवत का खंडन करते रहे परन्तु पंडितों में से शास्त्रार्थ करने को एक की भी हिम्मत न पड़ी। ग्वालियर से दयानन्द ने करौली को कूच किया। करौली के राजा की सभा के पंडित मणिराम से स्वामी जी के शास्त्रार्थ की चर्चा हुई। एक दिन स्वामी जी के सामने पंडित जी राजा को संकल्प का मंत्र बता रहे थे। उन्हों ने 'करिष्ये' की जगह 'करिस्ये' बोला। स्वामी जी ने कहा आपकी सभा मूर्ख सभा है यहां शास्त्रार्थ कौन करेगा और वहां से उठकर चले आए। एक दिन एक पंडित ने आकर महाराजा को आशीर्वाद दिया और उन्हें अन्न दाता कहा। दयानन्द ने तुरंत उसे रोक दिया और कहा ईश्वर के सिवाय कोई भी

अन्न दाता नहीं हो सकता। इसके पीछे जब मौज आई तो जयपुर चले गये। जयपुर में उन दिनों वैष्णवों और शैवों में बड़ा भारी शास्त्रार्थ चल रहा था। दयानन्द ने शैवों का पक्ष लिया और वैष्णवों को हराया। महाराजा रामसिंह भी शैव बन गये। और सैंकड़ों हज़ारों लोग विष्णु की पूजा छोड़ शिव की पूजा करने लगे। रुद्राक्ष बेचने वालों की चांदी होगई। हाथी और घोड़ों के गले तक में रुद्राक्ष की मालाएं पड़ गईं।

दयानन्द को लोगों ने बहुत कह सुन कर महाराजा से मिलने को जाने के लिए कहा परन्तु जो लोग महाराजा के मुंह लगे थे वह नहीं चाहते थे कि दयानन्द को महाराजा से भेट हो क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं उनके उपदेश से महाराजा के विचार पलट जावें और उनका टुकड़ा छिन जावे। एक दिन दयानंद महलों में गये भी परन्तु ऊपर लिखे मनुष्यों की चाल के कारण भेट न हुई। फिर महाराजा ने बहुतेरा चाहा कि दयानन्द उनसे मिल जावें परन्तु वह न गये। एक दिन बहुत से पंडितों ने इकट्ठे होकर कर उनसे शास्त्रार्थ किया परन्तु हार खाई। एक जैनगुरु से भी शास्त्रार्थ की बात चीत हुई और उन्हों ने कुछ प्रश्न दयानन्द के पास लिखकर भेजे। यहां क्या था प्रश्न आते देर हुई नहीं कि उनके उत्तर तैय्यार हो गये और उनके साथ में ही कुछ प्रश्न जैनमत पर भी कर दिये गये जिन का जैनगुरु से उत्तर न बन पड़ा।

जयपुर से दयानन्द अजमेर पहुंचे और वहां से पुष्कर। वहां भी वह वैष्णवों का खंडन करते रहे और उसका यह परिणाम हुआ कि सैंकड़ों मनुष्यों ने अपने गले से कंठी उतार २ कर फेंक दीं। अजमेर आकर उन्हों ने मूर्ति पूजा के खंडन में इश्तहार बंटवाए परन्तु कोई भी उसका मंडन करने के लिए सामने न आया। पादरियों से भी ३ दिन मुबाहिसा हुआ और उन्हें भी चुप कराकर ही छोड़ा। उन दिनों राजपूताना के एजेंट

कर्नल ब्रूक थे जो साधुओं से बहुत चिड़ते थे। एक दिन स्वा० कोठी के बरामदे में बैठे हुए थे कि सामने सड़क पर से ब्रूक साहब निकले। वह स्वामी को देखकर कोठी में चले आए। लोगों ने स्वामी से अलग हो जाने को कहा परंतु वह और सामने को हो बैठे। ब्रूकसाहब स्वामी से बड़े आदर से मिले और स्वामी ने उन्हें गौरक्षा का उपदेश किया।

अजमेर से दयानंद जयपुर आए परंतु इस बार शैव मत का भी खंडन किया। आगरा में सन् १८६६ का लारेंस साहब का दर्बार था वहां दयानंद ने भागवत के खंडन पर एक पुस्तक बना कर कई हजार बांटी और हरिद्वार सं० १६२४ के कुंभ में चले गये।

पाखण्ड खण्डिनी पताका

मेले में पहुंच कर दयानंद ने अपनी कुटिया पर 'पाखंड खंडिनी' झंडी लगाई। अनेक लोग उनका उपदेश सुनते रहे। मेले में उन्होंने देखा कि साधु संन्यासी, महन्त मठधारी, पंडित पुजारी सभी आपापंथी और स्वार्थी बने हुए हैं; देशमें अधर्म का राज है। तरह २ की बुराई हिन्दुओं में फैली हुई हैं। वेद विरुद्ध मत चल रहे हैं और जिधर देखो उधर ही अंधेर मचा हुआ है। देश की ऐसी बुरी हालत देख कर उनका जी भर आया और एक दम उन्हें गुरु विरजानंद के सामने दिये हुए वचन याद आगये। उन्हों ने सोचा मुझे क्या करना चाहिये था और क्या कर रहा है। इतना सोचना था कि उनके जी पर उदासी छागई और उन्हों ने तप करने और वैदिक धर्म का प्रचार करने की तैयारी की जी में ठानली। तुरंत ही जो कुछ उनके पास था लोगों को बाँट दिया और आप केवल एक कौपीन बाँध कर गंगा के किनारे घूमने के लिए चल दिये। उन्हों ने यह नियम कर लिया था कि सिवाय संस्कृत के और कुछ न बोलते थे और किसी से कुछ न मांगते थे।

सर्दी गर्मी की परवाह न थी। भर जाड़ों में जब लिहाफ़ों में भी दांत से दांत बजते हैं वह खुले मैदान में गंगा के किनारे केवल पुराल ओढ़कर पड़े रहते, शरीर पर रज लगाते और निर्द्वंद्व रहते। उस समय जिन्हों ने उन्हें देखा है वह कहते हैं कि उन का बदन कुंदन सा चमकता था। जहां कहीं भी वह जाते लोगों को ग़फ़लत की नींद से जगाते और वैदिक धर्म का उपदेश सुनाते। इसी तरह बिचरते और बिचारते वह कर्णवास ज़िला बुलन्दशहर में आ निकले। उनके आने की चर्चा आन की आन में चारों ओर फैल गई। कर्णवास के ठाकुरों ने उनके उपदेश को मान कर जनेऊ लिये। पं० अंबिकादत्त से मूर्त्ति पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ और उसने उनकी बात को मान कर कह दिया कि जो स्वामी जी कहते हैं ठीक है परंतु लोगों ने कहा कि जो अनूपशहर के पं० हीराबल्लभ भी मानलें तो हम भी मानलें वह भी आए और अपने ठाकुरों का सिंहासन साथ लेकर आए और यह कहकर आए कि अब मैं जब उठूंगा जब दयानंद से ठाकुरों को भोग लगवालूँगा। शास्त्रार्थ कई दिन तक हुआ अंत को हीराबल्लभ को दयानंद के बचनों के आगे सिर झुकाना पड़ा और कहां तो वह दयानंद से ठाकुरों को भोग लगवाते थे और कहां आपही को अपने ही हाथों से ठाकुरों के सिंहासन समेत गंगा में डालना पड़ा।

तलवार का वार

संवत् १९२५ के जेठ में फिर कर्णवास आ गये। इसबार बरौली के ठाकुर कर्णसिंह जो चक्रांकित थे दयानन्द के पास आए। और स्वामी जी से अंडबंड बातें कहने लगा। उसके माथे पर चक्रांकितों की श्री का तिलक लगा हुआ था। दयानंद ने कहा तुमने क्षत्रिय होकर यह भिखारियों का वेश क्यों बनाया है। बस फिर क्या था वह आपे से बाहर हो गया और लगा गाली

गलौच देने और स्वामी जी के मारने को तलवार म्यान से निकाल ली, दयानंद ने ज़मीन पर टेक कर उसके दो टुकड़े कर दिये। इस पर उसका एक साथी दयानंद पर वार करने को आगे बढ़ा पर उन्होंने उसे ऐसा धक्का दिया कि पछाड़ खाकर गिर पड़ा। कर्णसिंह बड़बड़ाता हुआ चला गया।

असौज सु० १५ को कर्णसिंह फिर गंगा स्नान को आया और दयानन्द के डेरे से १००-१२५ क़दम की दूरी पर ठहरा। उसने कुछ नौकरों को दयानन्द को मार डालने को भेजा, वह दो बार तो लौट २ गये, तीसरी बार कर्णसिंह ने उन्हें धमकाकर वह फिर भेजा परन्तु दयानन्द के कान में भी उसकी बातों की भनक पड़ गई थी और वह सावधान होकर बैठ गये थे। वह आदमी फिर आए और उन्होंने आकर कहा कुटी में कौन है दयानन्द ने दरवाज़े पर खड़े होकर ऐसे ज़ोर से 'हुं' कहा कि वह डरकर उलटे ही पांव भाग गये और घबराहट में गिर भी पड़े। कहते हैं कि कर्णसिंह को अपने पाप का बदला जल्द ही मिल गया। वह एक बड़ा मुक़द्दमा हार गया, उस का एक बहुत अच्छा घोड़ा मर गया, और आप भी बीमार होगया जिसमें उसका हाल पागलों जैसा हो गया।

मैं क़ैद कराने नहीं छुड़ाने आया हूं

दयानन्द जब अनूपशहर पहुंचे तो वहां रामलीला हो रही थी। उन्हों ने लोगों को समझाया कि अपने बड़ों का सांग बनाना अच्छा नहीं। इसका फल यह हुआ कि अगले साल रामलीला न हुई। अनूपशहर में एक दिन एक दुष्ट ने उन्हें पान में ज़हर दे दिया परन्तु उन्हें मालूम हो गया और योग की क्रिया करके उसे अपने शरीर से निकाल दिया। उस समय अनूपशहर के तहसीलदार सैय्यद मुहम्मद मुसलमान थे। वह स्वामी के भक्त थे, उन्होंने उस पापी को पकड़ कर उस

पर मुक़द्दमा चलाना चाहा परन्तु दयानंद ने उसे यह कह कर छुड़वा दिया कि "मैं लोगों को क़ैद कराने नहीं आया हूं छुड़ाने आया हूं।" छलेसर के रईस ठा० मुकन्दसिंह ने उनके उपदेश को मानकर अपनी ज़मींदारी के २० गाँवों के मन्दिरों की मूर्तियां उठवाकर काली नदी में डलवादीं।

छलेसर से कूच करके दयानन्द सोरों पहुंचे। बड़े मशहूर पंडित अंगद शास्त्री ने शास्त्रार्थ में हारकर मूर्तियां गंगा में फेंक दीं। इस समय स्वामी मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, पुराण, तिलक छाप, भागवत आदि का बहुत ज़ोर शोर से खंडन करते थे। सोरों में एक दिन कुछ बदमाशों ने सलाह की कि स्वामी को सोते हुए को गंगा में डाल दो परन्तु धोखे में एक और साधु को गंगा में डाल आए। सोरों से कासगंज के लोग आकर स्वामी को लिवा ले गये। वहां भी स्वामी ने वेदों का प्रचार किया। एक दिन वह शौच को जंगल जा रहे थे, कुछ और लोग भी उनके साथ थे। जब नगर से बाहर पहुंचे तो देखा रास्ते में दो सांड आपस में लड़ रहे हैं और रास्ता रुक रहा है, न इधर का कोई मनुष्य उधर जा सकता है न उधर का इधर। स्वामी आगे बढ़ गये। लोगों ने बहुतेरा रोका पर वह न माने और सांडों के पास पहुंचकर दोनों के सींग पकड़कर अलग कर दिया। शाहबाज़पुर में उन्हें स्वा० विरजानन्द के देहान्त की ख़बर मिली जिसे सुनकर वह बहुत दुखी हुए और कहा कि "आज व्याकरण का सूर्य्य अस्त होगया"। फ़र्रुख़ाबाद में एक साहूकार ने बहुत लागत से एक मन्दिर बनवाया था पर अभी तक उसमें मूर्ति नहीं रक्खी गई थी। जब स्वामी वहां पहुंचे तो उनके उपदेश से उसने मूर्ति रखने का विचार छोड़ कर उसमें पाठशाला क़ायम करदी।

इधर उधर घूमकर दयानन्द फिर फ़र्रुख़ाबाद आए तो एक दिन वह गंगा के किनारे जल में पांव लटकाए बैठे थे कुछ दंगई लड़कों ने उनपर रेत के गोले फेंकने शुरू किये, वह चुप

चाप बैठे रहे। जब एक गोले से उन की आंखों में रेत जा पड़ा तो वहां से उठ कर चले गये परन्तु लड़कों से कुछ न कहा। पौराणिक दयानन्द के मुक़ाबिले के लिए मेरठ से पंडित श्री गोपाल को लाए। सभा हुई, मूर्तिपूजा पर बात चली परन्तु थोड़ी ही देर में पं० श्रीगोपाल बग़लें झांकने लगे और चुप्पी साध कर बैठ गये। और तो इन से कुछ न बना काशी भागे हुए गये और वहां के परिडतों से इस बात की कि वेदों में मूर्ति पूजा की आज्ञा है एक व्यवस्था लाकर लोगों को दिखाते फिरे परन्तु शास्त्रार्थ करने पर राज़ी न हुए। इस के बाद कानपुर से परिडत हलधर ओझा को शास्त्रार्थ के लिए बुलवाया गया। मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ शुरू हुआ परन्तु वह उसे सिद्ध न कर सके और दूसरे विषयों पर बातें करने लगे। दयानन्द के सामने संस्कृत बोलना हँसी ठट्ठा न था, जहां अशुद्ध शब्द मुंह से निकला और उन्हों ने पकड़ा। हलधर जी अटक २ कर और अशुद्ध संस्कृत ब लने लगे। स्वामी ने कहा भाई यदि संस्कृत नहीं बोल सकते तो भाषा में ही बात चीत करो। होते २ रात का १ बज गया तब सभा दूसरे दिन के लिए रक्खी गई। दूसरे दिन की सभा में हलधर की वह गत बनी कि कही नहीं जाती। उन के होश ठिकाने न रहे और वह मूर्छा खाकर गिरने लगे तब उन के साथी उन्हें वहां से लिवा ले गये। फर्रुख़ाबाद में जीत के डंके बजा कर महाराज कानपुर पहुंचे। वहां एक दिन गंगा के किनारे बैठे थे कि कुछ दुष्ट उन पर चढ़ आए। उन्हों ने एक पेड़ की डाल तोड़ कर सब को मार भगाया और दो मनुष्यों को बग़लों में दबाकर गंगा में कूद गये। आप तो डुबकी लगाकर दूर जा निकले परन्तु वह बेचारे बड़ी मुश्किल से जल से बाहर निकले। यहां उन के उपदेश से लोगों को मूर्तिपूजा से ऐसी घृणा हुई कि मूर्तियों को धड़ाधड़ गंगा में

फेंकने लगे तब हलधर ओझा ने एक नोटिस छपवाया कि जिसे मूर्तियां फेंकनी हों वह उन्हें कैलास नामी मन्दिर में पहुंचा दिया करे फेंका न करे।

पण्डित हलधर के कहने सुनने से कानपुर में बहुत बड़ा शास्त्राथ रचा गया जिस में ५० हज़ार मनुष्य इकट्ठे हुए और वहां के जाइन्ट मजिस्ट्रेट मि० थेन सभापति बने। हलधरजी इस में भी हारे पर उन के साथियों ने यह नोटिस छपवा कर बांटे कि स्वामी हार गये। इस पर थेन सा० से आकर लोगों ने कहा कि ऐसा अन्याय होरहा है तो उन्हों ने लिख कर दे दिया कि जीत दयानन्द की हुई थी।

काशी का शास्त्रार्थ

२८ अक्तूबर सन् १८६६ को दयानंद काशी में पहुंचे और आनन्द बाग़ में उतरे। उन के आते ही नगर में खलबली मच गई। महाराजा काशी ने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए उकसाया और उस का दिन नियत कर दिया। उस दिन लोगों का इतना जमाव था कि मानो सारी काशी उमड़ पड़ी है, कोई पचास हज़ार आदमी होंगे। काशी के महाराजा आप आए। दो एक को छोड़कर काशी के नामी २ सारे पंडित तामझामों में सवार होकर बड़े ठाठ के साथ आए। शास्त्रार्थ शुरू हुआ दयानन्द कहते थे कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं, पण्डित कहते थे कि है। चार घण्टे तक बात चीत होती रही, पण्डितों ने बहुतेरा चाहा कि किसी तरह मूर्तिपूजा को छोड़कर दयानन्द को न्याय व्याकरण के चक्कर में डालें परन्तु स्वामी जी उन्हें बार बार ललकारते रहे कि मूर्तिपूजा को वेद में दिखाओ। पण्डितों ने दयानन्द को ताना दिया कि यदि तुम्हें सारे ग्रन्थ कण्ठ नहीं है तो काशी में क्यों आए थे। इस पर स्वामी जी ने पूछा क्या आप लोगों को सारे ग्रन्थ कण्ठ हैं। उन्हों ने कहा

दां। दयानन्द ने स्वा० विशुद्धानन्द से कहा कि मनु के अनुसार धर्म के लक्षण बताओ। वह न बता सके। तब एक दूसरा पंडित बोला मैं बताता हूं। दयानन्द बोले तुम अधर्म के लक्षण बताओ। इसपर वह भी चुप होगया। जब किसी तरह दयानन्द पण्डितों के जाल में न फंसे तो एक पंडित ने दो पुराने पत्रे निकाल कर कहा कि देखो यह वेद के पत्रे हैं, इन में पुराण सुनने की आज्ञा है। इस समय शाम हो गई थी। रोशनी का कुछ प्रबन्ध न था। एक धुन्धलीसी लालटैन लाई गई। दयानन्द उन पत्रों को लेकर देखने लगे। अभी एक दो मिनट ही हुई थी कि विशुद्धानन्द खड़े होगये कि हम अधिक नहीं ठहर सकते और सब ने मिलकर शोर मचा दिया कि दयानन्द हार गये। महाराजा काशी भी इस अन्याय में शामिल हो गये और शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। शास्त्रार्थ के पीछे कुछ दिन काशी रह कर जनवरी १८७० में महाराज प्रयाग के कुंभ पर चले गये। उसके पश्चात एक वर्ष से अधिक गंगा के किनारे विचरते रहे। इसी भ्रमणमें इन्होंने एक स्त्री का भूत उतारा। उसके घर वाले महाराज के पास गये और अपनी विपत्ति कही। महाराज अपना सोंटा लेकर पहुंचे। दुष्ट स्त्री इनका डीलडोल और सोंटा देखकर ऐसी डरी कि तुरन्त बकार उठी कि मैं अच्छी हूं।

बंगाल निहाल हो गया।

सन् १८७२ में पटना गये। वहाँ एक पंडितसे बातचीत हुई उस ने भागवत की बड़ाई की स्वामी ने उस का खण्डन किया इस पर उसने कहा कि खण्डन करना तो आसान है पर भागवत के बनाने वाले की विद्या देखो उसने १८००० श्लोक रच दिये। स्वामी ने कहा कि हम ३८ हजार रच सकते हैं तुम क़लम कागज़ लेकर बैठ जाओ। स्वामी ने जूते और खड़ाऊं के संवाद पर श्लोक बोलने शुरू किये। पंडित बेचारा लिखता २ हार गया और अन्त को लज्जित होकर चला गया।

दिसम्बर सन १८७२ में स्वामी दयानन्द कलकत्ता पहुंच गये। यहाँ आदि ब्राह्मसमाज के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से मिले और नवीन ब्राह्मसमाज के आचार्य केशवचन्द्र सेन से भी भेंट हुई और उन्हीं के मकान पर व्याख्यान भी दिये। लोग स्वामीकी शुद्ध, सरल और मनोहर संस्कृत को सुनकर दंग रह गये। एक व्याख्यान का सारांश समझाते हुए पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्नने उनके आशयके विपरीत लोगों को समझा दिया इस पर बाबू केशवचन्द्र सेन ने उन से कहा कि लोग आप के मतलब के विरुद्ध समझाते हैं इस से तो अच्छा है आप भाषा में ही बोला करें। उन्हों ने ही स्वामी जी को वस्त्र पहनने की सलाह दी। स्वामीजी के मन में हठ तो थी ही नहीं यह दोनों बातें अच्छी लगीं और मानलीं। दयानन्द कलकत्ते से चल कर हुगली आए और वहाँ पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति से जो महाराज काशी की सभा के सब से बड़े पण्डित थे शास्त्रार्थ हुआ परन्तु तारानाथ ऐसे बहके कि यही कह बैठे कि सारी उपासना ही भ्रममूलक है। आए तो थे मूर्तिपूजा सिद्ध करने और आप ही उस का खण्डन करने लगे। कलकत्ते से लौटते हुए दयानन्द छपरा पधारे। यहां एक पण्डित जगन्नाथ थे जो अपनी विद्या की बहुत डींग मारा करते थे। लोगों ने उन से स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को कहा तो उन्होंने यह कहदिया कि मैं उस नास्तिक का मुख नहीं देख सकता। जब यह बात स्वामीजी को मालूम हुई तो उन्होंने कहा कि वह मेरा मुख न देखें बीच में पर्दा डाल कर बातचीत करलें। अब तो पंडित जी को भागने का मार्ग ही न रहा। लाचार होकर उन्हें ऐसा करना ही पड़ा। अभी बातचीत शुरू ही हुई थी कि पण्डित जी लगे बहकने और थोड़ी ही देर में गूंगे बहरे बन गये।

मिर्ज़ापुर से महाराज कानपुर आए और परेड के मैदान में व्याख्यान का प्रबन्ध हुआ परन्तु वहां के मुसलमान कोतवाल

की धूर्तता से व्याख्यान न हो सका तब दूसरे स्थान पर हुआ

मार्च सन् १८७४ में दयानन्द वृन्दावन पधारे। रंगाचार्य मथुरा के सेठों के गुरु वैष्णवमत के आचार्य थे और बड़े विद्वान गिने जाते थे। वृन्दावन में भी स्वामी ने वैष्णवमत की खूब पोल खोली। रंगाचार्य को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया पर वह न आए और बीमीरीका बहाना कर दिया। एक दिन पं० मदनदत्त को स्वामी का व्याख्यान सुनकर मूर्तिपूजा से इतनी ग्लानि हुई कि उसी दम भरी सभा में खड़े होकर उस का खण्डन करने लगे। इस पर पौराणिकों में बड़ी खलबली मची और वह कहने लगे कि दयानन्द के पास जादू है जो कोई उस के पास जाता है उसी कीसी बोली बोलने लगता है। वृन्दावन से स्वामी मथुरा आए। वहां विरोधियों ने यह लीला रची कि एक दिन एक शराब बेचने वाले को उन के व्याख्यान में भेजा। उसने स्वामी से कहा कि हमारे दाम दिलवाइये। स्वामी ने कहा कि ठहरो व्याख्यान के बाद देंगे। व्याख्यान समाप्त होने पर स्वामी ने उसे कान पकड़ कर अधर उठा लिया, और कहा बोल तेरे कितने दाम हैं। वह गिड़गिड़ाया और बोला महाराज छोड़िये मुझे तो दुष्ट लोगों ने सिखा कर भेजा था।

जून १८७४ में स्वामी ने काशी आकर पौराणिकों को फिर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा परन्तु कोई सामने न आया। मुसलमानों के नेता सर सैयद अहमदखां उन दिनों काशी के सब जज थे। उनके बंगले पर कई व्याख्यान हुए। महाराजा बनारस ने बहुत विनती करके बग्घी भेजकर स्वामी को क़िले में बुलाया और सोने के सिंहासन पर बिठाकर पिछले अपराधों के लिए क्षमा मांगी और बड़े सम्मान के साथ विदा किया।

गुजरात में वेदों का नाद।

२६ अक्तूबर सन् १८७४ को स्वामी बम्बई पहुंच गये। वहां

उनके व्याख्यान के लिए एक अलग मण्डप बनाया गया। स्वामी ने अपने व्याख्यानों में गोकुलिये गुसाईयों की लीला की बखिया उधेड़नी आरंभ की, जिस पर वह बहुत घबराये। कुछ बदमाशों को इन के मारने के लिए भेजा गया और रसोइये के द्वारा भी इन्हें विष दिलाने का यत्न किया गया। जब कुछ न बना तो गोकुलियों ने आचार्य गुट्टूलाल जी को जो अंधे थे परन्तु बहुत विद्वान थे इनके विरुद्ध उकसाया। पण्डित गट्टूलाल ने लालबाग़ में एक सभा की और ऊटपटाँग बातें कहकर सभा को समाप्त कर दिया और कहा कि हमने वेदों से मूर्ति पूजा सिद्ध कर दी परन्तु स्वामी के एक शिष्य ने वहीं उन की भरी सभा में पोल खोल दी।

बम्बई से महाराज अहमदाबाद पधारे। यहां गोपालराव हरि देशमुख जज के उद्योग से एक शास्त्रार्थ भी हुआ जिस में २५० के लगभग पण्डित थे परन्तु वह मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सके और गालियों पर उतर आए। इस पर जज साहब ने खड़े होकर कह दिया कि पण्डित लोग मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सके। सूरत में बड़े धड़ल्ले से स्वामी के व्याख्यान हुए वहाँ स्वामी नारायण मत वाले उन के शत्रु हो गये। एक दिन जिस मकान में व्याख्यान होने वाला था उन्हों ने उसका ताला बन्द कर दिया। स्वामीने सड़क पर ही व्याख्यान दिया। सूरत में एक बूढ़े गुसाईं रहते थे जो पत्रों में महाराज की प्रशंसा सुन कर उनके दर्शनों की लालसा रखते थे। उन्हों ने बहुत विनीत भाव से स्वामी को अपने घर पर बुलाया और उसे ऐसा सजाया मानो कोई राजा आने को है। जब स्वामी वहां पधारे तो गुसाईं जी उन के चरणों पर गिरगये। बड़े प्रेम से भोजन कराकर अपने चेले चेलियोंको उनसे उपदेश सुनवाया। बड़ौदे में एक दिन स्वामी ने राजनीति के ऐसे मर्म खोले कि वहां के दीवान सर टी माधव राव उनके चरणोंमें गिर गये कि महाराज

मैंने राजनीति की इतनी पुस्तकें पढ़ीं परन्तु मुझे उसका महत्व न मालूम हुआ जो आज आप के एक व्याख्यान से हुआ। उन्हों ने स्वामी को १०००) रुपय भेट देना चाहे परन्तु स्वामी ने स्वीकार न किये, फिर राजकोट जाकर पहिला आर्य समाज स्थापित किया और फिर अहमदाबाद आकर स्वामी नारायण मत का खण्डन किया जो बम्बई प्रान्त में बहुत प्रचलित है और जनवरी सन् १८७५ में बम्बई लौट आए और १० अप्रैल सन् १८७५ को आर्य समाज स्थापित करके अहमदाबाद चले गये। तब पण्डितों ने कहना शुरू किया कि हम तो शास्त्रार्थ के लिए तैयार थे, स्वामी हम से डरकर भाग गये। इस पर तार देकर उन्हें फिर बम्बई बुलाया गया। पौराणिकों ने पंडित कमल नयनाचार्य को शास्त्रार्थ के लिए तैयार किया। सभा हुई, पं० कमलनयन पहले तो सभा में आने से बहुत बचते रहे परन्तु लोगों ने बैठने न दिया तो कुछ देर पीछे आप पर आते ही इस बात पर अड़ गये कि जो लोग सभा में मौजूद हैं पहले यह बताएं कि किस २ संप्रदाय के हैं। उन से सभापति ने बहुतेरा कहा कि महाराज इस व्यर्थ बात से क्या मतलब है मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ कीजिये परन्तु वह अपनी हठ पर अड़े रहे और अन्त को बिना शास्त्रार्थ किये ही चले गये।

बम्बई से जुलाई सन् १८७५ में महाराज पूना गये और दो महीने तक धूम के साथ प्रचार करते रहे। छावनी में भी उनके व्याख्यान हुए। वहां से जब वह विदा होने लगे तो लोगों ने एक जलूस बनाया जिस के लिए हाथी मंगाया परंतु वह हाथी पर सवार न हुए और पैदल ही चले। जब जलूस शहर में पहुंचा तो विरोधियों ने एक गधे को सजाकर उस पर लिखा 'दयानन्द'। दोनों जलूसों की मुठभेड़ होगई और दंगा भी हो गया। स्वामी व्याख्यान के स्थान पर चले गये और दंगा शांत होने पर उसी रात को व्याख्यान दिया। पूना से

महाराज बम्बई लौट आए और व्याख्यान देने आरंभ किये। पण्डित रामलाल एक पौराणिक पंडित शास्त्रार्थ के लिए आए और पुराणों के श्लोक पढ़ कर मूर्तिपूजा सिद्ध करने लगे। स्वामीने कहा वेदों के प्रमाण दो। उस बेचारे को वेदोंका ज्ञान न था वह लज्जित होकर बैठ गया। बम्बई से वेदभाष्य के नमूने छपवा कर स्वामीने पण्डितों के पास भेजे। सन् १८७५ में राजा जय किशनदास ने सत्यार्थ प्रकाश छपवाया परन्तु उस में लेखकों ने दुष्टता से कई जगह स्वामीजी के आशय के विरुद्ध बातें मिलादीं इसलिए उन्होंने उसे रद् कर दिया। अयोध्या पहुंचकर उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखनी शुरू की। अयोध्यासे स्वामी लखनऊ पहुंचे। पं० गंगाधर से शास्त्रार्थ भी हुआ जिसमें उन्होंने मुंहकी खाई। सन् १८७७के दरबार में स्वामी दिल्ली पहुंचे और सर सैयद अहमदखां, बाबू केशवचन्द्र सेन कन्हैयालाल अलखधारी आदि अनेक नेताओंसे बातें हुईं। उनके डेरे पर लोगोंकी सदा भीड़ रहती थी। शाहजहांपुर ज़िले में मुन्शी प्यारेलाल रईस ने अपनी ज़मींदारी के गाँव चाँदापुर में मार्च सन् १८७७ में एक मेला किया जिस में हिन्दू, ईसाइ, मुसलमान विद्वानोंको सत्य असत्यके निर्णयके लिए बुलाया। वैदिक धर्मके प्रतिनिधि स्वामी ही थे। तीन दिनतक बड़ी उत्तमता से शास्त्रार्थ हुआ जिस में स्वामी ने सब को निरुत्तर किया।

पंजाब का दौरा।

३१ मार्च सन् १८७७ को स्वामी लुधियाने पहुंचे और व्याख्यान देने आरम्भ किये। इन के व्याख्यानों को सुन कर एक ब्राह्मण जो ईसाई होने का निश्चय कर चुका था, ईसाई होने से बच गया। जब दयानन्द लाहौर पहुंचे तो पहिले तो ब्राह्मसमाजियों ने उन की आव भगत की परन्तु जब स्वामी ने उन के मत का खण्डन किया तो नाराज़ हो गये

और उनके भोजन आदिके खर्चका बिल भेजदिया। पौराणिकों ने मकान के मालिकों को बहकाकर मकान खाली करा लिया तब वहांके प्रसिद्ध डा० रहीमखां ने अपनी कोठी उन के ठहरने के लिए देदी और वहां व्याख्यान होने लगे जिनका यह प्रभाव हुआ कि आर्य्य समाज स्थापित होगया। आर्य्य समाज के १० नियम स्वामी ने लाहौर ही में बनाए थे। अमृतसर में ४० हिंदू विद्यार्थी ईसाई होनेका इरादा करचुके थे परंतु स्वामी के उपदेश सुनकर वह पतित होने से बच गये। सितम्बर सन् १८७७ में दयानन्द जालन्धर पहुंचे और मौलवी अहमदहुसैन से शास्त्रार्थ किया। रावलपिंडी पहुंचकर स्वामी एक पारसी की कोठी में ठहरे परन्तु पौराणिकों ने उसे बहकाकर कोठी खाली कराली और वह एक बाग़ में चले गये। एक दिन सत्संगमें उन्होंने ब्रह्मचर्य की महिमा बयान करते हुए ब्रह्मचारी के बलकी बहुत प्रशंसा की। सरदार विक्रमसिंहको विश्वास न आया। सत्संगके बाद जब वह अपनी दो घोड़ों की गाड़ी में बैठकर चलने लगे तो दयानन्द ने पीछे से गाड़ीका पहिया पकड़ लिया। कोचवानने बहुतेरे हँटर पटखाए पर घोड़े टस से मस न हुए, तब सरदार साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो स्वामीने मुसकराते हुए कहा कि ब्रह्मचारीके बलका नमूना दिखा रहा हूं। मुलतान में राय सागरमल एगज़ेक्टिव इंजिनियर कहा करते थे कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़ कर नास्तिक हुआ हूं परन्तु दयानन्दके ३ दिनके तर्कने उन्हें आस्तिक बना दिया।

युक्तप्रांत में भ्रमण

जूलाई सन् १८७८ में स्वामी रुड़की पधारे। एक दिन रुड़की कालिजके कुछ विद्यार्थी कहनेलगे कि हमारे बड़े साइंस नहीं जानते थे इस पर उन्हों ने बतलाया कि संस्कृत में सब विद्याएं हैं और साइन्सकी जो २ बात विद्यार्थियोंने पूछी उसका तत्काल ऐसा ठीक उत्तर दिया कि वह लोग सुनकर [illegible]कित

गये। मई सन् १८७८ में वह फिर मेरठ आबिराजे। वहाँ करनल आलकट और मैडम ब्लैवैट्स्की थियासाफ़िकल सोसाइटीके प्रधान और मंत्री जो अमेरिकासे आएथे उनसे मिलने आए। इन्हीं दिनों पण्डिता रमाबाई भी मेरठ ही थीं। स्वामीने उनसे स्त्रियोंमें धर्म प्रचार करनेको कहा परन्तु उन्होंने न माना और जब स्वामीने उन्हें एक बंगाली कायस्थसे विवाह करनेसे रोकना चाहा तो नाराज़ होकर चलीगई। बरेलीमें स्वामीका कई दिन तक पादरी स्काट से शास्त्रार्थ हुआ और हर बात में पादरी साहब का मुंह बन्द किया। एकदिन स्वामी उनके गिरजाकी तरफ़ जानिकले। स्काटने उन से उपदेश दिलवाया, स्वामी वहां भी सच कहनेसे न चूके और ईसाके घरमें ही ईसाई मत का खण्डन किया। दिसम्बर सन् १८७६ में स्वामी काशीमें थे और करनल और मैडम भी उनसे मिलने आए हुए थे। करनल और दयानन्दके बंगाली टोलेके स्कूलमें व्याख्यान होनेको थे। विरोधियोंने जाकर कलक्टर के कान भरदिये कि यदि दयानंद का व्याख्यान होगा तो ग़दर होजायगा। उसने झट व्याख्यान बन्द करनेका हुक्म दे दिया और जैसे ही स्वामी व्याख्यान देने को वेदी पर चढ़े वैसे ही उन्हें कलक्टरका हुक्म दिया गया। इसपर समाचार पत्रोंमें बहुत आन्दोलन मचा और सरकार से भी लिखा पढ़ी हुई तब वह हुक्म रद हुआ। देहरादून में दयानंद ने मोहम्मद उमर नामक जन्मके मुसलमान को शुद्ध करके उस का नाम अलखधारी रक्खा। आर्यसमाज के इतिहास में यह पहिली शुद्धि थी।

राजस्थान यात्रा और निर्वाण

जून सन् १८८१ में दयानन्द अजमेर से मसूदा पहुंचे। वहां के राव साहब ने बड़े प्रेम से उनका सत्कार किया। वहां एक जाति में यह रीति थी कि वह लोग अपनी लड़कियों का ब्याह एक विशेष जाति के मुसलमानों से किया करते थे।

स्वामी ने उन्हें समझाकर उस रीति को बन्द कराया और हजारों आर्य कन्याओं को मुसलमान होने से बचा दिया। नवम्बर सन् १८८१में महाराज चित्तौड़ पधारे वहां महाराणा सज्जनसिंहने श्रीमेवा में उदयपुर पधारने की प्रार्थना की। वह यह कह कर कि बम्बई से लौटते हुए आवेंगे बम्बई चले गये। बम्बई पहुंच कर उन्हों ने आर्यसमाज से थियासोफिकल सोसाइटी का संबन्ध तोड़ दिया क्योंकि उन्हें निश्चय हो गया था कि उक्त सोसाइटी के दोनों नेता नास्तिक थे। बम्बई से लौटते हुए महाराज उदयपुर पहुंचे, महाराणा ने अपने प्रेम और सत्कार से उन्हें ऐसा प्रसन्न रक्खा कि वहां कई मास ठहरे रहे। वहां ही उन्हों ने परोपकारिणी सभा स्थापित की और सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संस्करण तैयार किया। मार्च सन् १८८३ में स्वामी शाहपुरा चले गये। राजाधिराज सर नाहरसिंहजी ने श्रीचरणों की बहुत सेवा की और आर्यसमाज स्थापित किया। मई सन् १८८३ में दयानन्द जोधपुर पहुंच गये। राज्य की ओर से उन का उचित सन्मान हुआ। महाराजा सर कर्नल प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह उनकी सेवा बहुत प्रेम से करते थे। महाराजासे भी कई बार मिले। एकदिन जब महाराजाकी कोठीपर पहुंचे तो उन्हों ने देखा कि महाराजा की वेश्या नन्हीजान की पालकी आरही है, उन्होंने महाराजाको बहुत फटकारा और कहा कि क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुतिया, सिंहका कुतियाके साथ कभी भी मेल उचित नहीं है। इसे सुनकर नन्हीजान उन की जानकी गाहक होगई। राजके मुसलमान मुसाहिब आला भी उनके विरोधी होगये। निदान कुछ षड्यन्त्र रचा गया और एक दिन दूधमें रसोइयेसे मिलकर उन्हें विष दिलवा दिया गया। उन्हें मालूम तो होगया और उन्हों ने विष निकालनेका यत्न भी किया परन्तु विष बहुत तेज़ था कुछ आराम न हुआ।

डाक्टर भी उलटी दवा देने लगा, जब उन की अवस्था बहुत भयानक होगई तो महाराजा ने बहुत अफ़सोस किया और उन्हें आबू भेजा गया। डाक्टर लछमनदास आबू से बदली होजानेके कारण नीचे उतर रहे थे, रास्तेमें उनकी महाराजसे भेट हुई। वह अपनी नोकरी की परवाह न करके आबू लौट गये और वहां ऐसी चतुरता और परिश्रम से इलाज किया कि स्वामीको बहुत कुछ आराम होगया। डाक्टर लछमनदास के अफ़सरने बदली की जगह जानेके लिए तंग किया और उन्हें जाना पड़ा। उनके पीछे स्वामीकी तबीअत फिर बिगड़ी और वह अजमेर के लिए रवाना होगये। अजमेर पहुंचते २ दशा बहुत बिगड़ गई। बहुत कुछ दौड़ धूप की गई परन्तु रोग बढ़ता ही गया। ता० ३० अक्तूबर सन् १८८३ को सायंकाल के ५ बजे उन्होंने कहा कि आर्य लोगों को बुलाकर हमारे पीछे खड़ा करो और कमरे के सब द्वार खोल दो। कुछ देर छत की ओर देख कर वेद मन्त्र पढ़े और संस्कृत में ईश्वर प्रार्थना की फिर गायत्री मन्त्र पढ़ा और कुछ देर ध्यान करके कहने लगे "हे! दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा! तैंने अच्छी लीलाकी"! इतना कहते ही करवट ली और सांस रोक कर सदा के लिए उसे बाहर निकाल दिया।

यह है संक्षिप्त जीवनी ऋषि दयानन्द की जिसने वेदों का फिरसे प्रचार किया, संसारको दिखाया कि एक सच्चा ईश्वर भक्त कितना सच्चा, निडर और देशहितैषी होता है, जिस ने जीवनभर ब्रह्मचारी रह कर बतलाया कि ब्रह्मचारी में कितना बल, साहस विद्या, देश और जाति प्रेम होता है। जिसने बतलाया कि हिन्दुओं की दुर्दशा वेदों की शिक्षा को न मानने, और आपसकी फूटसे ही हो रही है। प्यारे पाठको हमारा कल्याण दयानन्द के पीछे चलने से ही हो सकती है ॥ इति ॥

ओ३म्

ऋषिवचनामृत।

१-परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अवश्य करनी चाहिये

२-वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। वेद परमेश्वरोक्त हैं। सबको इन्हीं के अनुसार चलना चाहिये।

३-वेद पढ़ने सुनने का सबको अधिकार है।

४-परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है उसकी मूर्ति नहीं बन सकती।

५-पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है।

६-मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करे।

७-वीर्यरक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति है।

८-क्रोधादि, दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन बोले।

९-जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् है।

१०-जिस देश के पदार्थ से अपना शरीर बना, अभी पालन होता है, आगे होगा उस की उन्नति तन, मन, धन से सब मिलकर प्रीति से करें।
